

Yogatattva in Svetasvatara Upanishad (श्वेताश्वतरोपनिषद् में योगतत्त्व)

Dr. Bharat Bhushan Singh
Dr. Sandeep Thakre

शोध सारांश

उपनिषद् पूर्णरूप से योगशास्त्र हैं। क्योंकि ये शान्ति व मोक्ष तथा आनन्दप्राप्ति को योग द्वारा सिद्ध करने की शिक्षा देते हैं। उपनिषद् रूपी योगविद्या को उच्च शिखर तक पहुँचाने में भारत का योगदान अग्रणी है। उपनिषद् पर विचार करें तो यह अपौरुषेय वेद का अन्तिम भाग अर्थात् निष्कर्ष (सार) है और ज्ञान का आदिस्रोत व विद्या का अक्षय भण्डार है। उपनिषद् भारतीय धर्म-ग्रन्थों में एक परम उज्ज्वल व जगमगाता हुआ ऐसा रत्न है जिनके प्रकाश में आध्यात्मिक ज्ञान, योग के सिद्धान्त व गूढ़ तत्त्व मनुष्य को स्पष्ट रीति से दिखाई पड़ते हैं।

श्वेताश्वतरोपनिषद् का स्थान मुख्य उपनिषदों (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डुक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक आदि) में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस उपनिषद् में कुल 6 अध्याय और 113 मन्त्र हैं। इस उपनिषद् का उपदेश श्वेताश्वतर ऋषि ने दिया था।

सारांश रूप में देखा जाये तो श्वेताश्वतर उपनिषद् भारतीय मानस में हमेशा से उठते रहे प्रश्न जैसे मैं कौन हूँ, क्या हूँ, कहाँ से आया हूँ, मेरे करने योग्य कर्म कौन-से कौन-से हैं। आदि का समाधान भी यह उपनिषद् करती है। श्वेताश्वतर उपनिषद् भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। इनमें संस्कृति, समाज के विभिन्न पक्षों, जीवनमूल्यों तथा नैतिक मापदण्डों के भी दर्शन होते हैं। इसमें तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण प्राप्त है। यह उपनिषद् कहती है कि 'उठो, जागो और श्रेष्ठ बनो' क्योंकि यह संसार छूरे की धार पर चलने के जैसा है।

शब्दकुंजी : योग , तत्त्व , सिद्धि , परमतत्त्व , कर्म ,आहार,प्रत्याहार , धारणा, ध्यान

प्रस्तावना

उपनिषद् आज के समय को मार्ग दिखाने के लिये परमावश्यक है। क्योंकि ये ग्रन्थ कर्म, ज्ञान व साधना प्रधान हैं। योग, उपनिषद् के अतिरिक्त जीवन के परम सत्य तक पहुँचने का कोई उपाय नहीं है। उपनिषदों में कई प्रकार के योगमार्गों की चर्चा की गयी है, जो मनुष्य को सदाचरण से युक्त करते हुए मोक्षगामी करने तक की यात्रा में सहायक है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में योग सम्बन्धी अनेक तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया है। इसमें ध्यान को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। वहीं प्राणायाम पर गूढ़तम विचार करते हुए स्थान आदि की मर्यादाएँ समझाते हुए उन्नति के लक्षण भी बताये गए हैं। " योगसाधना से पञ्चभूतों की साधना सिद्धि तथा आत्मतत्त्व से ब्रह्म तत्त्व के साक्षात्कार की फलश्रुतियाँ बतलायी गयी हैं। यहाँ परमात्मा को ही उपास्य माना गया है। जीव के कर्मानुसार ही उसे विभिन्न गतियाँ व योनियाँ मिलती हैं। यहाँ जगत् का कारण परमात्मतत्त्व को कहा गया है।

इसके अतिरिक्त श्वेताश्वतरोपनिषद् में योग साधना के सहायक तत्वों के रूप में आहार, योगाभ्यास के लिए उपयुक्त स्थान, आसन, प्रत्याहार, धारणा, योग सिद्धि के लक्षण, आदि की चर्चा की गयी है। इस प्रकार इस उपनिषद् में योग के विविध तत्त्वों का प्रतिपादन कर योगतत्त्वों की उपादेयता का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में श्वेताश्वतरोपनिषद् के इन्हीं योग तत्वों पर विचार किया गया है।

आहार

योगशास्त्र में योग-साधक के लिए आहार के विषय में अनेकशः कहा गया है। हठयोगत्रयी (गोरक्षपद्धति, घेरण्डसंहिता, हठयोगप्रदीपिका) सभी में योगसाधना के लिये आहार के विषय में बहुत कुछ बातें कही गयी हैं। घेरण्ड ऋषि मिताहार के विषय में कहते हैं कि जो मिताहार न करके योगारम्भ करता है, उसको नाना रोग उत्पन्न होते हैं। उसका योगसिद्ध नहीं होता।¹

योगग्रन्थों में आहार के विषय में विस्तार से कहा गया है। उपनिषदों में भी अध्यात्ममार्ग के पथिक अथवा योगपथ के साधक हेतु आहार की शुद्धता, पवित्रता के लिए बहुत कुछ कहा गया है। मनुष्य के शरीर में जो पञ्चकोश हैं, उन पर आहार का प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसलिए आहार पर ध्यान देना परमावश्यक है। अतः आहार के महत्त्व को छान्दोग्योपनिषद् में इस प्रकार कहा गया है कि आहार के शुद्ध होने पर अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अन्तःकरण के शुद्ध होने पर स्मृति दृढ़ हो जाती है और स्मृति प्राप्ति पर हृदय की समस्त गाँठें खुल जाती हैं।¹

आहार के विषय में यून तो श्वेताश्वतरोपनिषद् में कुछ भी स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है। फिर भी अनेक भाष्यकार श्वेताश्वतर के 'संयुक्तचेष्टः'² से योगसाधना के लिए आहार-विहार आदि समस्त चेष्टाओं को ध्यानयोग की साधना हेतु कथन करते हैं। श्री आचार्य श्रीराम शर्मा भी 'संयुक्तचेष्टः' का अर्थ आहार-विहार की विधिवत् क्रियाओं के रूप में करते हैं।³ प्रो.सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार इसका सीधा अर्थ 'संयुक्तचेष्टः', चेष्टाओं (शारीरिक गतियों) को रोककर करते हैं।⁴

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण के अनुसार यहाँ 'संयुक्तचेष्टः' का अर्थ यही प्रतिध्वनित होता है कि शरीर सम्बन्धी जो चेष्टाएँ हैं, जिनमें आहार-विहार व इन्द्रियों के विषय आते हैं, उनमें संयम करे, सात्त्विक व परिमित आहार-विहार का सम्पादन ही योग-साधना के लिए प्रशस्त होता है।

योगाभ्यास के लिए उपयुक्त स्थान-

प्रायः योग के सम्बन्धित सभी ग्रन्थों में योग के लिए उपर्युक्त स्थान की चर्चा की गयी है। एक वाक्य में कहें तो योग शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का केन्द्रीकरण करता है, विविध योगपद्धतियाँ योग के लिए उपयुक्त स्थान को प्राप्त करके ही लाभ देती हैं। इसीलिए प्राचीन ऋषि-मुनियों या योगसाधकों ने योगसाधना के लिए ऐसे स्थानों के निर्देश दिए हैं, जहाँ बैठकर साधक अपना योगाभ्यास कर सके।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में जो योगाभ्यासी के लिए उपयुक्त स्थान बताया गया है, उसके विषय में कहा है कि परब्रह्म परमात्मा में मन लगाने वाला साधक ऐसे स्थान पर आसन लगाये अर्थात् बैठे जहाँ की भूमि समतल हो, ऊँची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी न हो। जो सब प्रकार से शुद्ध हो, जहाँ पर कूड़ा-कंकड़ आदि न हों, झाड़-बुहार कर साफ किया हुआ हो, जहाँ कंकड़, बालू न हो और अग्नि या धूप की गर्मी भी न हो, यथावश्यक जल प्राप्त हो सके, जो मन के अनुकूल हो तथा जहाँ का दृश्य नेत्रों को पीड़ा पहुँचाने वाला भययुक्त न हो। ऐसे गुहा आदि वायुशून्य एकान्त स्थान में पहले बताये हुए प्रकार से आसन लगाकर अपने मन को परमात्मा में लगाने का अभ्यास करना चाहिए।⁵

आसन

साधारणतया मनुष्य जब पूजा-पाठ या सन्ध्या-वन्दन अथवा कोई भी धार्मिक अनुष्ठान करने बैठता है तो वह किसी भी आसन में बैठकर उपासना या आराधना करता है। पतञ्जलि सुखपूर्वक बैठने को आसन कहते हैं।⁶ हठयोग में कहा है कि चौरासी आसनों में भी श्रेष्ठ सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन और भद्रासन हैं, किन्तु इन चारों में भी सदैव सुख देने वाले सिद्धासन में बैठें।⁷

ठीक इसी प्रकार श्वेताश्वतरोपनिषद् में ब्रह्म (परमात्मा) में निष्ठा हेतु या उनके ध्यान हेतु जो ध्यान योग की विधि कही गयी है, उसको करने हेतु जो प्रथम यह कहा गया है कि 'वक्षःस्थल, ग्रीवा और सिर ये तीन जिसमें उन्नत (उठे हुए) रखे जाते हैं, यानि जब साधन साधना हेतु बैठा है तो वह किसी भी आसन (सुखासन, पद्मासन या सिद्धासन) में बैठकर अपने ऊपरी भाग को सम और सीधा रखता है। शास्त्रों में यही विधि विधान है।⁸ वैसे स्पष्ट रूप से यहाँ किसी आसन का संकेत या उल्लेख नहीं है।

श्वेताश्वतर में अन्यत्र भी ध्यान लगाने के विषय में कहा है कि मन एवं प्राण की सविता- देवता की ज्योति में लगाये। अग्नि की ज्योति का अवलोकन करे। उसे सूक्ष्म शरीर के क्षेत्र में स्थापित करे।⁹ प्रथम अध्याय के एक मन्त्र में कहा है कि अपने देह को अरणि और प्रणव को उत्तरारणि करके ध्यानरूप मन्थन के अभ्यास से स्वप्रकाश परमात्मा को छिपे हुए (अग्नि) के समान देखे।¹⁰

प्राणायाम

प्रायः योग के प्रत्येक शास्त्र में प्राणायाम का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। योगसाधना में तो प्राणायाम एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है, अष्टांगयोग में तो प्राणायाम¹¹ चौथा महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। प्राणायाम का तात्पर्य है प्राणों का आयाम अर्थात् यह एक प्रकार से प्राणगति का व्यायाम है। जिसमें प्राणों की गति-श्वास और प्रश्वास की गति को यथाशक्ति रोकना प्राणायाम कहलाता है।¹²

श्वेताश्वतरोपनिषद् ध्यान की सिद्धि में प्राणायाम के महत्त्व को पूर्णरूप से स्वीकार करती है। वहाँ कहा है कि साधक को चाहिए कि जब वह (संयुक्तचेष्टः) शारीरिक गतियों को अर्थात् समस्त चेष्टाओं को रोककर वश में करके, प्राण को (श्वास को) बल पूर्वक भीतर रोके अर्थात् उसका पीड़न करे। जब प्राण भीतर न रुके, वह क्षीण होने लगे तब नासिका से (मुख से नहीं) उसे बाहर निकाल दे। उस ज्ञानी साधक को चाहिए कि जैसे दुष्ट घोड़ों वाले रथ में जैसे घोड़ों को वश में किया जाता है। (चंचल इन्द्रियरूप अनियन्त्रित घोड़ों से युक्त) मन को अप्रमत्त (अप्रमादी), सावधान होकर प्राणायाम के साधन से मनरूपी घोड़े को वश में करे।¹³ इस प्रकार प्राणायाम से अज्ञान पर पड़ा आवरण क्षीण होता है तथा किसी भी प्रकार की धारणा करने में मानसिक सक्षमता प्राप्त होती है।¹⁴

प्रत्याहार

प्राणायाम के द्वारा मन की धारणा क्षमता में वृद्धि होती है। ऐसा होने के पश्चात् प्रत्याहार निष्पन्न होता है। इसीलिए प्राणायाम की जो विधि श्वेताश्वतरोपनिषद् में वर्णित की गयी है, उसी के साथ प्रत्याहार रूपी योग के पाँचवें अंग¹⁵ की चर्चा भी कर दी गयी है। श्लोक के द्वितीय चरण पर यदि सम्यक् ध्यान दें तो वहाँ स्पष्ट है कि वह विद्वान् (योगसाधक) दुष्ट अश्व से युक्त रथ के सारथि के समान सावधान होकर मन का नियन्त्रण करे। क्योंकि मन इन्द्रियों के साथ रमण करता है। अतः उन दुष्ट इन्द्रियों को उनके आहार से विमुख करके, अन्दर से जोड़े, उनको बाह्य दृश्यों से हटाये और अन्तःकरण की ओर आमुख करे। अतः इस मन्त्रभाग में कहा है कि अप्रमत्त अर्थात् सावधान होकर वह योगी साधक प्राणायाम द्वारा मन को धारण करे, वश में करे।¹⁶ प्राणायाम के सतत अभ्यास से मन व इन्द्रियाँ वश में आ जाती हैं, यही प्रत्याहार है। प्रत्याहार सिद्ध होने पर धारणा स्वयं हो जाती है।

धारणा

ध्यान से पूर्व धारणा की स्थिति होती है। इसके लिए महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि चित्त को किसी स्थान विशेष में बाँध देना (टिका देना) धारणा है।¹⁷

धारणा के विषय में श्वेताश्वतरोपनिषद् में यों तो कोई विशेष उल्लेख नहीं है। अपितु ध्यानविधि से पूर्व जो भाव उद्भूत होते हैं, वे धारणा की ही अभिव्यक्ति करते हैं। क्योंकि जब तक हमारा मन किसी वस्तु विशेष में नहीं टिकेगा तब तक वह ध्यान की प्रक्रिया में निरन्तर नहीं लगेगा, इसीलिए कहा है कि मन एवं प्राण को सविता-देवता की ज्योति में लगायें, अर्थात् टिकायें। अग्नि की ज्योति का अवलोकन करें। उसे सूक्ष्म शरीर के क्षेत्र में स्थापित करें।¹⁸ आचार्य श्रीराम शर्मा धारणा को जीवन हेतु उपादेय बताते हुए लिखते हैं कि धारणा का तात्पर्य उस प्रकार के विश्वासों की धारणा करने से है जिनके द्वारा मनोवाञ्छित स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है।¹⁹

ध्यान

उपनिषद् में ध्यान को साक्षात् ब्रह्म ही माना है। अर्थात् जो यह मानकर उपासना करता है कि 'ध्येय ही ब्रह्म है', उसके ध्यान की गति इतनी विस्तृत हो जाती है जितनी ब्रह्म की।²⁰ सांख्य में कहा है कि 'मन का विषय विकारों से रहित होना ध्यान है और रोगों का निराकरण ही ध्यान है। इसीलिए ध्यान की इसी महत्ता के कारण इसे 'ध्यानयोग' की भी संज्ञा दी जाती है।

महर्षि पतञ्जलि चित्त की शान्ति व पवित्रता के लिए अर्थात् ईश्वरसिद्धि हेतु ध्यानविधि को उत्कृष्ट बताते हैं।²¹ इस ध्यानविधि के द्वारा परमाणु और परम महत् पर्यन्त स्थिरचित्त का वशीकार हो जाता है, ऐसा मानते हैं।²² ध्यानाभ्यासों के द्वारा चित्त इतना सक्षम व सामर्थ्यवान् हो जाता है कि साधक उसे परम सूक्ष्म परमाणु से लेकर परम महत् किसी भी सत्तावान् वस्तु पर अभिकेन्द्रित या स्थिर कर सकता है। ध्यान की इसी साधना-पद्धति का यानि ध्यानयोग का श्वेताश्वतरोपनिषद् में अन्यतम महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

योग-सिद्धि के लक्षण

श्वेताश्वतरोपनिषद् में परमात्मा प्राप्ति के लिए किए जाने वाले योग का साधन करने वाले योगी की साधना ठीक हो रही है या नहीं, इसकी पहचान निम्न लक्षणों से जानी गयी है। परमात्मा प्राप्ति हेतु जब ध्यानयोग का साधन किया जाता है, तब उसको अपने सामने कभी कुहरे के समान रूप से दीखता है, और कभी चन्द्रमा की भाँति शीतल प्रकाश सर्वत्र फैला हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार योग में ब्रह्म-दर्शन से पहले-पहल ये रूप ब्रह्म को अभिव्यक्त करने के लिए होते हैं। वस्तुतः ब्रह्म का इतना भारी प्रकाश है कि उसे सहन करने के लिए पूर्व में ये ज्योतियाँ दिखाई देती हैं, जिससे उस प्रकाश को योगी सहन कर सके।²³

अगले श्लोक में योग का गुण उसका फल कब प्रवृत्त होता है? कब मिलता है? यह बताते हुए कहा है कि इस ध्यानयोग का साधन करते-करते जब पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), वायु और आकाश इन पाँच महाभूतों का उत्थान हो जाता है। और इन पाँचों से महाभूतों से सम्बन्ध रखने वाली योगविषयक पाँचों सिद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं, उस समय योगाग्नि से योगी का शरीर देदीप्यमान हो जाता है। तब उसे रोग नहीं सताता, उसे जरा और अकाल मृत्यु नहीं सताती, वह रोगहीन, जराहीन व मृत्युहीन हो जाता है।²⁴ इस प्रकार योग गुण के प्रवृत्त होने पर फल यह होता है कि योगी का शरीर हल्का हो जाता है, शरीर में आलस्य या भारीपन का भाव नहीं रहता। उसके शरीर में कान्ति बढ़ जाती है, स्वर मधुर हो जाता है। शरीर से सुगन्ध निकलता है तथा मल-मूत्र अल्प हो जाता है।²⁵

योगसिद्धि या तत्त्वज्ञान का प्रभाव बताते हुए कहा है कि देह को कीच समझने वाला योगी जब उसके भीतर प्रकाशमान आत्मतत्त्व को देख लेता है, तब संसार की अनेकता में से अपने को खींचकर एक हो जाता है, कृतार्थ और वीतशोक हो जाता है।

निष्कर्ष :

श्वेताश्वतरोपनिषद् वास्तव में एक योग विषयक शास्त्र है। जिसमें योग साधना से सम्बन्धित योग तत्त्वों का वर्णन किया गया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में योग तत्त्वों के रूप में मुख्यतः - यौगिक आहार, यौगिक योगाभ्यास के लिए उपयुक्त स्थान, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, योग सिद्धि के लक्षण आदि का वर्णन प्राप्त होता है। जिनका आश्रय लेकर मुक्ति के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1 सरस्वती स्वामी निरंजनानन्द (२०१) घेरंडसंहिता, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर बिहार, पृ. सं. २९४
मिताहारं विना यस्तु योगारम्भ तु कारयेत्। नानारोगो भवेत् तस्य किञ्चित् योगो न सिद्ध्यति। घेरंडसंहिता ५.१६
- 2 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३८०
प्राणान्प्रपीडयेह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छुसीत । दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः । श्वेताश्वतरोपनिषद् २.९
- 3 शर्मा आचार्य श्रीराम (२०१०), १०८ उपनिषद् (ज्ञानखण्ड), युगनिर्माण योजना गायत्री तपोवन मथुरा, पृ. १४१
- 4 सिद्धान्तालंकार प्रो. सत्यव्रत (१९५४), एकादशोपनिषद्, विजयकृष्ण लखनपाल देहरादून, पृ. सं. ९९४
- 5 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३८०
तीर्थ स्वामी ओमानन्द (संवत् २०६१, २३वाँ संस्करण) पातञ्जलयोगप्रदीप, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ४२०
स्थिरसुखमासनम्॥ योगदर्शन २.४६
- 7 दिगम्बर स्वामी, झा पिताम्बर (२००१), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम योग संस्थान, पृ. सं. १७ सिद्धं पद्मं तथा सिंहं भद्रं चेति चतुष्टयम् । श्रेष्ठं तत्रापि च सुखे तिष्ठेत्सिद्धासने सदा ।। हठप्रदीपिका १.३४
- 8 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३७९
- 9 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३७७ युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः । अग्नेज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत ।। श्वेताश्वतरोपनिषद् २.१
- 10 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३७६ स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् । गोरखपुर, पृ. सं. ३७९ ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् । ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्नगूढवत्॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् १.१४
- 11 तीर्थ स्वामी ओमानन्द (संवत् २०६१, २३वाँ संस्करण) पातञ्जलयोगप्रदीप, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३५५ यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।। योगदर्शन २.२९
- 12 तीर्थ स्वामी ओमानन्द (संवत् २०६१, २३वाँ संस्करण) पातञ्जलयोगप्रदीप, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ४४०

- तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ योगदर्शन २.४९
- 13 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३८०
- प्राणान्प्रपीडयेह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छसीत । दुष्टाश्रयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः ॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् २.९
- 14 तीर्थ स्वामी ओमानन्द (संवत् २०६१, २३वाँ संस्करण) पातञ्जलयोगप्रदीप, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ४५४
- (क) ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ योगदर्शन २.५२ (ख) धारणासु च योग्यता मनसः ॥ योगदर्शन २.५३
- तीर्थ स्वामी ओमानन्द (संवत् २०६१, २३वाँ संस्करण) पातञ्जलयोगप्रदीप, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३९. (क)
- ३५५ (ख) ४५५ (ग) ४५५ (क) यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।। योगदर्शन २.२९ (ख) स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः । योगदर्शन २.५४ (ग) ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ योगदर्शन २.५०
- 15 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३८०
- दुष्टाश्रयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान् मनोधारयेता प्रमत्तः । श्वेताश्वतरोपनिषद् २.९
- 16 तीर्थ स्वामी ओमानन्द (संवत् २०६१, २३वाँ संस्करण) पातञ्जलयोगप्रदीप, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ४७८
- देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।। योगदर्शन ३.१
- 17 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३७७ युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः । अग्नेज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत ।। श्वेताश्वतरोपनिषद् २.१
- 18 शर्मा आचार्य श्रीराम (१९९४), व्यक्तित्वविकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा ३३२
- 19 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस पू. सं. ५ ३३७ गोरखपुर, पृ. सं. ४६३ तपोध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद् ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथा कामाचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति । छान्दोग्योपनिषद् ७.६.२ ।
- 20 तीर्थ स्वामी ओमानन्द (संवत् २०६१, २३वाँ संस्करण) पातञ्जलयोगप्रदीप, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. सं. २५४ ३३८. यथाभिमतध्यानाद्वा ।। योगदर्शन १.३९
- 21 तीर्थ स्वामी ओमानन्द (संवत् २०६१, २३वाँ संस्करण) पातञ्जलयोगप्रदीप, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. सं. २५४ परमाणु परममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ योगदर्शन १.४०
- 22 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३८१ नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम् । एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ।। श्वेताश्वतरोपनिषद् २.११
- 23 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३८१ पृथ्व्यसेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते । न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ।। श्वेताश्वतरोपनिषद् २.१२

-
- 24 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेसगोरखपुर, पृ. सं. ३८१-३८२ तक का सार
- 25 लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्टवं च। गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् २.१३

Dr. Bharat Bhushan Singh (Assistant Professor)
Department of Yoga, Himalayan Garhwal University, Pauri Garhwal Uttarakhand
Email : yogwithbhushan@gmail.com
Mob : 9868347615

Dr. Sandeep Thakre (Assistant Professor)
Department of Yogic Science, Indira Gandhi National Tribal University, Amarkantak- 484887
(Madhya Pradesh)
Email:sandeepganpatrao@gmail.com
Mob. : 9325580874

